तत्त्वार्थदीपनिबन्धके अनुबन्धचतुष्टय

– असित शाह.

उपक्रम

शास्त्रार्थप्रकरणकी प्रारम्भिक २२ कारिकानमें और वाके प्रकाशमें महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीने कैसे या ग्रन्थके अनुबन्धचतुष्टय बतायें हैं ये समझें.

अधिकारी

मंगलाचरणरूप प्रथम कारिकाके बाद दूसरी कारिकामें अधिकारी बताये हैं. या कारिकाकी टीकानमें याको विस्तृत विचार है. संक्षेपमें जिन दैवीजीवनको जीववरण, जन्मवरण और भक्तिमार्गमें वरण निश्चिततया सिद्ध है पर भजनरूप व्यापार अब तक सम्पन्न नहीं हो पायो है वे याके अधिकारी हैं. श्रीगोपीनाथजीने याकू खूबसूरतीसू साधनदीपिकामें बतायो है: ''देहद्रोण्या यियासूनां परं पारं भवाम्बुधेः, गुरुणा कर्णधारेण उत्तार्याः स्वोपदेशतः'' (साधनदीपिका ११). माने अधिकारी जीव भवसागरके किनारे आ गयो है, वाने पार जानेको संकल्प कर रख्यो है और वाके पास देहकी नाव भी है. बस कर्णधारसमान गुरु उपदेश दे कि या नावसू कैसे पार जायो जाय वाकी कमी है.

प्रयोजन

दूसरे छोरपे १५ सू २२ वी कारिकानमें ग्रन्थको प्रयोजन बतायो है: ''बुद्धावतारे तु अधुना ... न सेवन्ते तदर्थम् एषः उद्यमः.'' यहाँ थोड़े विस्तारसू साम्प्रत परिस्थिति बताते भये अन्तमें प्रयोजन स्पष्ट बतायो है : शास्त्रनको मत जीवकू भगवत्सेवार्थ प्रवृत्त करनेमें है ये न जानवेसू मुग्ध अधिकारी जीव सेवापरायण नहीं हो रहे हैं तदर्थ ये ग्रन्थ लिखवेको उद्यम कियो है, जासू वे भजन करवे लग जायें. जो शास्त्रज्ञान-कर्मसू

मण्डित होनेपर भी भगवद्भजनमें प्रवृत्त नहीं होवे हैं उनकी नियति भी स्पष्ट कर दी है : ''तेषां कर्मवशानां हि भवएव फलिष्यति'' (का. १६).

सम्बन्ध

ग्रन्थको विषयके साथ सम्बन्ध कारिकामें ''वच्मि यथामति'' (का. ५) कह्यो वाके प्रकाशमें ''उपदेशन्यायेन कथयामि'' कहकर बतायो है. माने विषय उपदेश्य है और ग्रन्थ उपदेशक है ; ग्रन्थमें विषयको उपदेश दियो गयो है. अब सामान्यतया उपदेश दो प्रकारके होवे हैं : तत्त्वोपदेश और कृत्योपदेश. कोई ग्रन्थमें सर्वथा/प्राधान्येन तत्त्वोपदेश होवे हैं यथा बालबोध या पुष्टिप्रवाहमर्यादा तो कोईमें सर्वथा/प्राधान्येन कृत्योपदेश होवे है यथा विवेकधैर्याश्रय. अब तत्त्वार्थदीपनिबन्धमें वामेंसू क्या है या प्रश्नकू थोड़ी देर अनुत्तरित रखकर आगे बढें.

विषय

अब अनुबन्धचतुष्टयको चौथो अंग विषय क्या है ये सोचें. तो समूचे निबन्धको विषय ४थी कारिकामें श्रीजगन्नाथरायजीके लिखित वचनके रूपमें बतायो है : ''एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतं एको देवो देवकीपुत्रएव, मन्त्रोऽपि एकः तस्य नामानि यानि कर्मापि एकं तस्य देवस्य सेवा''. याके प्रकाशमें सार बतायो है : ''शास्त्रम् अवगत्य मनो-वाग्-देहैः कृष्णः सेव्यः''. श्रीमहाप्रभुजी संक्षेपमें सार बतानेमें निपुण हैं, सो निपुणता यहाँ भी प्रकट हो रही है. 'एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतं' कू वे 'शास्त्रम् अवगत्य' कह रहे हैं जो कि स्पष्ट है. 'एको देवो देवकीपुत्रएव' को सार 'मनसा कृष्णः सेव्यः' बतायो, क्यों जो संकल्प मनसू होवे है. शास्त्रज्ञान होनेके बाद मनसू प्रभुको वरण करनो अपेक्षित है भजन शुरु करनेकेलिये. फिर वचनसू वरण. 'मन्त्रोऽपि एकः तस्य नामानि यानि' को

सार 'वचसा कृष्णः सेव्यः' तो स्पष्ट है. फिर देहसू वरण. 'कर्मापि एकं तस्य देवस्य सेवा' को सार 'देहेन कृष्णः सेव्यः' है, क्योंकि अन्यत्र कारिका १३के प्रकाशमें ''कृष्णपदेन च बहिर्भजनमेव मुख्यम् इति निरूपितम्'' ऐसे कह्यो है. सत्स्नेहभाजनकार श्रीगट्टूलालाजीने बतायो है: ''अत्र 'शास्त्रम् अवगत्य' इति प्रथमपादस्य, सर्वमूलभूतत्वात् सर्वोत्तमत्वभावनपूर्वक-स्मरणरूपं मनसा सेवनं द्वितीयपादस्य, स्मरणसिद्धये वाचा सेवा तृतीयपादस्य, कायेन सेवा चतुर्थपादस्य च निर्गलितो अर्थः. 'कृष्णः' इति तु श्लोकस्थ-'देवकीपुत्र'पदस्य अर्थः.'' प्रकाशमें श्रीआचार्यचरण आज्ञा करे हैं: ''देवकीपुत्रेण गीतं गीता. गीतायां भगवद्वाक्यान्येव शास्त्रम् इति अर्थः. वेदानामपि तदुक्तप्रकारेणैव अर्थनिर्णयः. उपास्यनिर्धारम् आह 'एको देवः' इति, मूलभूतो अयम् इति अर्थः. सर्वदा स्मरणार्थं साधनम् आह 'मन्त्रोऽपि एकः' इति. कर्तव्यम् आह 'तस्य' इति. न मनुष्यत्वेन ज्ञातव्यः इति आह 'देव'-इति. सेवैव कर्तव्या. शास्त्रम् अवगत्य मनोवाग्देहैः कृष्णः सेव्यः इति अर्थः.'' सो संक्षेपमें गीतादि शास्त्रनकू जानकर काया-वाणी-मनसू कृष्णसेवा करनी चाहिए – यह विषय है.

अब कण्ठोक्ततया याकू विषय नहीं कह रहे हैं श्रीआचार्यचरण, पर ''इति आकलय्य सततं शास्त्रार्थः सर्वनिर्णयः श्रीभागवतरूपं च त्रयं वच्मि यथामति'' (का. ५) या कारिकाके प्रकाशमें बतावे हैं : ''सततम्' इति मध्ये विरोधिज्ञानाभावः.'' अब जाको तनिक भी विस्मरण किये बिना ग्रन्थरचना की जाए तो वो तो विषय ही होयगो न! यामें चकारसू अपने अन्य ग्रन्थनको भी समुच्चय कियो है: ''चकारात् मीमांसाद्वयभाष्यं, प्रकरणानि, भागवतटीका च गृहीता.'' सो अपन कह सकें कि वल्लभवाणीमात्रको विषय ये ही है कि ''शास्त्रम् अवगत्य मनो-वाग्-देहैः कृष्णः सेव्यः''.

अब व्यवस्था समझनेकेलिये अपन यों कर दें कि यह आपश्रीके समग्र वाङ्मयको विषय अंगी है और तद्-तद् ग्रन्थके तद्-तद् विषय वाके अंग हैं. जैसे प्रकरणग्रन्थ भक्तिवर्धिनीको विषय भक्तिवर्धनके उपाय है सो अंग है और ''शास्त्रम् अवगत्य मनोवाग्देहैः कृष्णः सेव्यः'' यह वामें अनुक्त विषय है जो कि अंगी है. श्रीआचार्यचरणके सम्पूर्ण वाङ्मयको मुख्य उपदेश ''शास्त्रम् अवगत्य मनोवाग्देहैः कृष्णः सेव्यः'' है.

यहाँ तीन प्रकरण किये हैं वाके बारेमें श्रीआचार्यचरण प्रकाशमें बतावे हैं : ''शास्त्रार्थो गीतार्थः. सर्वस्यापि ज्ञानादेः निर्णयः द्वितीयः ; असम्भावना-विपरीतभावनानिवृत्त्यर्थं द्वितीयम्. शास्त्रार्थस्य संक्षेपरूपत्वाद् विस्तारार्थं भागवतरूपं तृतीयं प्रकरणं, यत्र भागवतं रूप्यते.'' सो ये विषय हैं एक-एक प्रकरणके. जैसे श्रीमद्भागवतके एक-एक स्कन्धके अर्थ एक-एक सर्गादि भगवल्लीला है और समग्र द्वादशस्कन्धात्मक भागवतपुराणको अर्थ दशविधलीलायुत प्रभु हैं, वैसे यहाँ एक-एक प्रकरणके विषय और समग्र तत्त्वार्थदीपनिबन्धको विषय बताये हैं.

अब पहले अनुत्तरित रख्यो थो वा प्रश्नकू लें. तो ''शास्त्रम् अवगत्य'' में तत्त्वोपदेश सूचित है, जो ''मनोवाग्देहैः कृष्णः सेव्यः'' में कथित कृत्योपदेशको अंग है. सो यहाँ तत्त्वोपदेश भी है और कृत्योपदेश भी है, पर जो तत्त्वोपदेश है सो कृत्योपदेशको अंग है. ये अंगांगिभाव 'अवगत्य' पदसू भी स्पष्ट है और आगे और भी स्पष्ट कियो है : ''अयमेव महामोहो हि इदमेव प्रतारणं, यत् कृष्णं न भजेत् प्राज्ञः शास्त्राभ्यासपरः कृती, तेषां कर्मवशानां हि भवएव फलिष्यति'' (का. १६).

माने शास्त्रीयकर्म-ज्ञानपरायण अधिकारी भजन नहीं कर रह्यो है तो वह महामुग्ध है. सो गीतादिशास्त्रद्वारा या वाल्लभवेदान्तद्वारा भी तत्त्वज्ञान प्राप्त करके कोई भगवत्सेवापरायण नहीं हो रह्यो है तो वो श्रीआचार्यचरणके उपदेशको अनुसरण नहीं कर रह्यो है.

भूतकालमें कुछ तथाकथित महानुभाव ऐसो मन्तव्य प्रकट करते थे और आज भी अनेक ऐसे मिल सके हैं जो माने हैं कि श्रीगुसाँईजीने सेवाप्रकारको विस्तार कियो सो श्रीआचार्यचरणको आशय न समझ पानेके कारण दामोदरदासजीके दुःसंग या दुष्प्रभाववशात्! श्रीगोपीनाथजी कुछ दूसरी दिशामें मार्गकू ले जाते, जो कि श्रीआचार्यचरणकू अभिप्रेत है, जामें तत्त्वज्ञानकी प्रधानता होती और सेवा गौण होती!! अब या बालिशताको ईलाज तो यह प्रकाशकी पंक्ति ही है. खैर.

अनुबन्धचतुष्टयके अलावा यहाँ कुछ अन्य बातें भी श्रीआचार्यचरणने बतानी प्रासंगिक समझी हैं. सो स्वयंको आप्तवक्ता होनो, शाब्दप्रमाणव्यवस्था, पारिभाषिक शब्दावली आदि भी यहाँ स्पष्ट कर दिये हैं. याके अलावा जैसे खयाल गायकीको गवैया राग गाते गाते आड-कुहाड लगावे वैसे वेदान्ती होयवेसू आपश्रीने कछुक पूर्वपक्षनिरसनपूर्वक सिद्धान्तपक्षको स्थापन कियो है. विस्तारभयसू वाकू यहाँ नहीं बता रह्यो हूँ.

टीकाकारनमें श्रीपुरुषोत्तमजीने मंगलाचरणकी कारिकाके आवरणभंगमें अपनी मति अनुसार अनुबन्धचतुष्टय बतायो है: ''भगवतः फलत्वबोधनात् प्रयोजनम् उक्तम्. तेन तत्प्राप्तीच्छुः अधिकारी इत्यपि सिद्धम्. 'भगवति' इत्यादिना नमनकृतेः सिद्धान्तत्वप्रतिपादनात् फलरूपः साधनरूपः च भगवत्तद्भक्त्यात्मा विषयः उक्तः. तावता प्रतिपाद्य-प्रतिपादकभावः सम्बन्धोऽपि सिद्धः इति अनुबन्धचतुष्टयम् अत्र सिद्धम्.'' साथमें खुलासा कियो

है: ''यद्यपि इदं स्वयमेव अग्रे वक्ष्यन्ति तथापि एतस्य पद्यस्य शास्त्रार्थसंग्रहरूपत्वात् मया अत्रापि तद् बोधितम् इति अदोषः.'' बादमें सत्प्रकरणकी उत्थानिकामें वे कहे हैं: ''एवं ग्रन्थस्य विषय-सम्बन्ध-प्रयोजनानि उक्त्वा शास्त्रम् आरभमाणाः...'' (का. २३ आवरणभङ्ग). सो उनके मतमें भी २२वी कारिका तक अनुबन्धचतुष्टय बतायो गयो है.

विषयको विस्तृत विवेचन

अब ये समझें कि श्रीजगन्नाथरायजीके लिखित वचनके आधारपर ये अंगी विषय शास्त्रज्ञानपूर्वक कृष्णभजन बतायो वाकी महत्ता क्या है.

शास्त्रार्थप्रकरणकी ही ९५वी कारिकामें श्रीआचार्यचरणने बतायो है: ''वैराग्यज्ञानयोगैः च प्रेम्णा च तपसा तथा, एकेनापि दृढेन ईशं भजन् सिद्धिम् अवाप्नुयात्''. यामें पाँच अंग बताये हैं सांगोपांग भजनके. याके प्रकाशमें पाँचोंकी आवश्यकता बताइ है: ''पञ्चाङ्गयुक्तः पुरुषो भगवन्तं भजेत्. तत्र प्रथमं वैराग्यम् अङ्गं ; तदभावे भगवदावेशाभावात् न भजनसिद्धिः. द्वितीयं ज्ञानं ; सर्वपदार्थानां याथार्थ्यरूपं भगवतः च. तदभावे निश्चयाभावात् न प्रवृत्तिः. योगोऽपि अङ्गं, मनसः चाञ्चल्ये भजनानुपपत्तेः. तथा प्रेमापि अङ्गं ; तदभावे भजनं स्वतःपुरुषार्थरूपं न भवेद् रसाभिव्यक्त्यभावात्. तपोऽपि अङ्गं ; तदभावे देहादेः आमत्वात् न भजनं सिद्ध्यति. तपसा च देहेन्द्रियादीनां पाकः.'' पर पाँचोंसू सम्पन्न अधिकारी दुर्लभ है: ''पञ्चानां समुदायो दुर्लभः इति गौणपक्षम् आह.'' या लिये ''एकेनापि दृढेन ईशं भजन् कृष्णम् अवाप्नुयात्'' आज्ञा की है. यामें पंचपर्वा विद्यामेंके सांख्यके स्थानपर ज्ञान और भक्तिके स्थानपर प्रेमकू आपश्रीने जमायो है, सो भजनको संदर्भ है यासू उचित

ही है. तो पाँचमेंके ज्ञान और प्रेम या दोसू सम्पन्न भी होय तो पर्याप्त है भजनको आरम्भ करवेकेलिये. या लिये शास्त्रार्थप्रकरणको उपसंहार करते आपश्री आज्ञा करे हैं: ''एवं सर्वं ततः सर्वं स इति ज्ञानयोगतः, यः सेवते हरिं प्रेम्णा श्रवणादिभिः उत्तमः, प्रेमाभावे मध्यमः स्याद् ज्ञानाभावे तथा आदिमः, उभयोः अपि अभावे तु पापनाशः ततो भवेत्'' (का. १०१-२). माने ज्ञान+प्रेम = उत्तम, केवल ज्ञान/प्रेम = मध्यम अथवा केवल प्रेम = उत्तम और केवल ज्ञान = मध्यम, ज्ञानाभाव+प्रेमाभाव=अधम.

(या बारेमें ''चार बंगड़ी नहीं तो बे तो मलशे'' रवैया अपनाकर कतिपय अंगवालो भजन शुरु कर देनो क्षम्य है, पर तनुवित्तजाके केवल तनुजा और केवल वित्तजा यों विभाग करने अक्षम्य है. ये तो आचार्यवाणीको नियमित अवगाहन करवेपर ही समझ आ सके, शाखाचंक्रमणसू नहीं.)

सो ज्ञानार्थ शास्त्रार्थप्रकरण और सर्वनिर्णयप्रकरण हैं: ''शास्त्रार्थो गीतार्थः. सर्वस्यापि ज्ञानादेः निर्णयः द्वितीयः ; असम्भावना-विपरीतभावनानिवृत्त्यर्थं द्वितीयम्'' (का. ५ प्रकाश). प्रेमार्थ भागवतार्थप्रकरण है: ''श्रीभागवततत्त्वार्थम् अतो वक्ष्ये सुनिश्चितं, यज्ज्ञानात् परमा प्रीतिः कृष्णं शीघ्रं फलिष्यति'' (सर्वनिर्णय का. ३२९). ये वैसे प्राधान्येन व्यपदेश है ; सर्वथा वैसो है ये अभिप्राय नहीं है.

शेष तीन अंग वैराग्य, योग और तपकी भजनमें उपादेयता तो यहाँ प्रकाशमें आपश्रीने बता ही दी. पर साधनाके उपदेशमें ज्ञान-प्रेममय भक्तिके विकासके उत्तरोत्तर सोपान चढ़ते ये तीनों अंग आवश्यक मात्रामें स्वतः सम्पन्न हो जायेंगें ऐसी आशा रखते भये आपश्री सावधानी बरतते उनकी उपेक्षा कर रहे हैं.

सिद्धान्तमुक्तावलीमें या बारेमें श्रीआचार्यचरण आज्ञा करे हैं: ''ज्ञानाभावे पुष्टिमार्गी तिष्ठेत् पूजोत्सवादिषु, मर्यादास्थः तु गंगायां श्रीभागवततत्परः, अनुग्रहो पुष्टिमार्गे नियामकः इति स्थितिः, उभयोः तु क्रमेणैव पूर्वोक्तैव फलिष्यति, ज्ञानाधिको भक्तिमार्गः एवं तस्मात् निरूपितः'' (श्लो. १७-१९). यहाँ संदर्भानुसार पुष्टिमार्गीको अर्थ प्रेमवान् और मर्यादास्थको अर्थ ज्ञानवान् ले सकें. सो उनकू धीरे धीरे अन्य चार अप्राप्त भजनांग सिद्ध हो जायेंगें यों श्रीआचार्यचरणने बतायो है. यह भक्तिमार्गकी ज्ञानमार्गसू अधिकता है कि खण्डशः आरम्भ करनेपर भी अन्तमें मुख्यफल मिल सके.

पूर्वपक्षनिरास

तत्त्वार्थदीपनिबन्धमें श्रीआचार्यचरणने अपने जीवनके पूर्वार्धमें जो शास्त्रनको आकलन करके समझ्यो वाकी कारिकाएँ लिखी तथा उत्तरार्धमें वापे प्रकाश लिखकर और स्पष्ट की. यामें गीता और भागवतको अर्थ बतायो. इतनो पुरुषार्थ और परिश्रम. पर ''मुर्गी जानसे जाए और मियाँको स्वाद न आए!'' अपने सम्प्रदायके कुछ दिवंगत और कुछ विद्यमान महानुभावनकू ये ग्रन्थ नापसन्द है. ''तदभावे स्वयं वापि मूर्तिं कृत्वा हरेः क्वचित् परिचर्यां सदा कुर्यात्'' (सर्वनिर्णय का. २२८) आदि कारिकानको उपदेश उनकू हजम नहीं होवे है. सो वे ऐसो मन्तव्य प्रकट करे हैं कि यह ग्रन्थ पुष्टिमार्गीय नहीं है पर विष्णुस्वामीमतानुसारि मर्यादामार्गीय है! आपश्रीकी ३१ वर्षकी आयुके समय प्रभुने प्रकट होके ब्रह्मसंबंधदीक्षाकी आज्ञा दी वाके पहलेको है!! सो आज्ञा मिलनेके बाद आपश्रीको मत बदल गयो और जीवनके उत्तरार्धमें फिर पुष्टिमार्गीय ग्रन्थरचना करी!!! ऐसी निराधार मान्यताको उत्तर श्रीलालूभट्टजीने ऐसे दियो

है: ''‘इति आकलय्य सततम्’ इत्यस्य व्याख्याने ‘सततम् इति मध्ये विरोधिज्ञानाभावः’ इति, आकलन-कथनयोः मध्ये इति अर्थः. भगवच्छास्त्रं गीता पञ्चरात्रं सर्वप्रकारेण ज्ञात्वा यावद्ग्रन्थानां निर्माणं कृतं तन्मध्ये विरोधिज्ञानं न उत्पन्नं ; यथाशास्त्रार्थमेव निरूपितम् इति भावः'' (का. ५ योजना). स्वयं श्रीआचार्यचरणने ''चकारात् मीमांसाद्वयभाष्यं, प्रकरणानि, भागवतटीका च गृहीता'' (का. ५ प्रकाश) आज्ञा करके अपने समूचे वाङ्मयकी मणिमालाको सूत्र ''शास्त्रम् अवगत्य मनोवाग्देहैः कृष्णः सेव्यः'' बता दियो है. श्रीहरिरायजीने षोडशग्रन्थ और या तत्त्वार्थदीपनिबन्धपे लिखे अपने लघुग्रन्थको नाम ''स्वमार्गीय-शरण-समर्पण-सेवादिनिरूपणम्'' रख्यो है. सो वामें ‘स्वमार्ग’सू श्रीहरिरायजीकू विष्णुस्वामीमत या मर्यादामार्ग अभिप्रेत हो सके यों माननो मूर्खताकी पराकाष्ठा है. पर देशके गृहमंत्री श्रीअमित शाहने कह्यो है वैसे समझदारीको कोई इंजेक्शन नहीं होवे है जो लगाते ही समझदारी आ जाए!

श्रीआचार्यचरणने जो मार्ग प्रवर्तित कियो है वाको ध्रुवमन्त्र है: शास्त्रम् अवगत्य मनोवाग्देहैः कृष्णः सेव्यः.

॥ बुद्धिप्रेरककृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु ॥

* * *